

४६. मायाविनी-पुष्पदत्तायाः कथा

प्रणम्य त्रिजगन्नाथं श्रीजिनं शर्मकोटिदम् । मायाशल्यकथां माया-विनाशाय गदाम्यहम् ॥१॥
 अत्राभूदजितावर्तपत्तने सुचिरंतने । पुष्पचूलो महाराजः पुष्पदत्ता प्रियाभवत् ॥२॥
 एकदासौ महीनाथो राज्यं कुर्वन्निजेच्छया । अमरादिगुरोः पार्श्वे मुनीन्द्रस्य महाधियः ॥३॥
 धर्ममाकर्ण्य जैनेन्द्रं स्वर्गमोक्षसुखप्रदम् । त्रिधा वैराग्यमासाद्य मुनिर्जातो विचक्षणः ॥४॥
 पुष्पदत्ता च सा राज्ञी ब्रह्मिलाख्यार्थिकान्तिके । आर्थिकारूपमादाय कुलैश्वर्यादिगर्विता ॥५॥
 अन्यासामार्थिकाणां च धर्मतत्त्वपराङ्मुखा । वन्दनां न करोति स्म धिङ्मूढानां कुचेष्टितम् ॥६॥
 तथासौ पुष्पदत्ताख्या मूढात्मा स्वशरीरके । सुगन्धद्रव्यकेनोच्चैः संस्कारं कुरुते स्म च ॥७॥
 तदा सा ब्रह्मिला प्राह जैनमार्गे विचक्षणा । आर्थिके पुष्पदत्ते भो तवेदं नैव युज्यते ॥८॥
 तच्छ्रुत्वा सापि दुष्टात्मा मायावाक्यं जगाद च । भो कान्तिके स्वभावेन सुगन्धं मे शरीरकम् ॥९॥
 यस्य चित्ते स्वयं नास्ति धर्मः श्रीमज्जिनेशनाम् । बोधितस्यापि दुष्टत्वा-त्तस्य दुष्कर्म पापिनः ॥१०॥
 एवं मायामहाशल्यमंडिता पुष्पदत्तिका । मृत्वा पापेन चम्पायां तद्राजश्रेष्ठिनो गृहे ॥११॥

४६. पुष्पदत्ता की कथा

अनन्त सुख के देने वाले और तीनों जगत् के स्वामी श्रीजनेन्द्र भगवान् को नमस्कार कर माया का नाश करने के लिए मायाविनी पुष्पदत्ता की कथा लिखी जाती है ॥१॥

प्राचीन समय से प्रसिद्ध अजितावर्त नगर के राजा पुष्पचूल की रानी का नाम पुष्पदत्ता था । राजसुख भोगते हुए पुष्पचूल ने एक दिन अमरगुरु मुनि के पास जिनधर्म का स्वरूप सुना, जो धर्म स्वर्ग और मोक्ष के सुख की प्राप्ति का कारण है । धर्मोपदेश सुनकर पुष्पचूल को संसार, शरीर, भोगादिकों से बड़ा वैराग्य हुआ । वे दीक्षा लेकर मुनि हो गए । उनकी रानी पुष्पदत्ता ने भी उनकी देखा-देखी ब्रह्मिला नाम की आर्थिका के पास आर्थिका की दीक्षा ले ली । दीक्षा ले-लेने पर भी उसे अपने बड़प्पन, राजकुल का अभिमान जैसा का तैसा बना रहा । धार्मिक आचार-व्यवहार से वह विपरीत चलने लगी और ओर आर्थिका को नमस्कार, विनय करना उसे अपने अपमान का कारण जान पड़ने लगा । इसलिए वह किसी को नमस्कारादि नहीं करती थी । इसके सिवा उस योग अवस्था में भी अनेक प्रकार की सुगन्धित वस्तुओं द्वारा अपने शरीर को सिंगारा करती थी । उसका इस प्रकार बुरा, धर्मविरुद्ध आचार-विचार देखकर एक दिन धर्मात्मा ब्रह्मिला ने उसे समझाया कि इस योगदशा में तुझे ऐसा शरीर का श्रृंगार आदि करना उचित नहीं है । ये बातें धर्मविरुद्ध और पाप की कारण हैं । इसलिए कि इनसे विषयों की इच्छा बढ़ती है । पुष्पदत्ता ने कहा-नहीं जी, मैं कहाँ श्रृंगार-विंगार करती हूँ । मेरा तो शरीर ही जन्म से ऐसी सुगन्ध लिए हैं । सच है-जिनके मन में स्वभाव से धर्म-वासना न हो उन्हें कितना भी समझाया जाये, उन पर उस समझाने का कुछ असर नहीं होता । उनकी प्रवृत्ति और अधिक बुरे कामों की ओर जाती है । पुष्पदत्ता ने यह मायाचार कर

जाता सागरदत्तस्य दासी पूतिमुखी कुधीः। इति ज्ञात्वा बुधैर्नित्यं त्याज्यं मायाकुर्म तत् ॥१२॥
मायासौ पशुयोनिदुःखजननी माया कुलध्वंसिनी माया रूपयशोमहत्त्वसुगतिश्रीशर्मनिर्नाशिनी।
ज्ञात्वेत्थं जिनधर्मकर्मनिरतैः सत्पण्डितैर्दूरतस्त्यक्त्वा तां भवसागरस्य लतिकां धर्मेन कार्या मतिः ॥१३॥

इति कथाकोशे मायाविनी पुष्पदत्ता-कथा समाप्ता।

४७. मरीचि-कथा

शर्मशस्याम्बुदं नत्वा श्रीजिनाङ्घ्रिद्वयं मुदा। वक्ष्ये मरीचिवृत्तान्तं पूर्वसूत्रानुसारतः ॥१॥
अयोध्यानगरे पूर्वं चक्रिणो भरतेशिनः। पुत्रो मरीचिनामाभूद्भव्यात्मा भद्रमानसः ॥२॥
इन्द्रनागेन्द्रचन्द्राद्यैश्चर्चितेन निरन्तरम्। श्रीमदादिजिनेनामा सोपि जातो मुनिस्ततः ॥३॥
एकदा तं जिनाधीशं श्रीमत्तीर्थकरं मुदा। समवादिसृतौ नत्वा जगाद भरतेश्वरः ॥४॥
स्वामिन्नग्रे भविष्यन्ति ये त्रयो विंशतिर्जिनाः। तेषां मध्येऽत्र कोप्यस्ति तीर्थेशां भावितीर्थकृत् ॥५॥
तेनोक्तं श्रीजिनेन्द्रेण केवलज्ञानचक्षुषा। भो वत्स ते सुतश्चायं मरीचिर्नैव संशयः ॥६॥

ठीक न किया। इसका फल इसके लिए बुरा हुआ। वह मरकर इस मायाचार के पाप से चम्पापुरी में सागरदत्त सेठ के यहाँ दासी हुई। उसका नाम जैसा पूतिमुखी था, इसके मुँह से भी सदा वैसी दुर्गन्ध निकलती रहती थी। इसलिए बुद्धिमानों को चाहिए कि वे माया को पाप की कारण जानकर उसे दूर से ही छोड़ दें। यही माया पशुपति के दुःखों का कारण है और कुल, सुन्दरता, यश, माहात्म्य, सुगति, धन-दौलत तथा सुख आदि का नाश करने वाली है और संसार के बढ़ाने वाली लता है। यह जानकर माया को छोड़े हुए जैनधर्म के अनुभवी विद्वानों को उचित है कि वे धर्म की ओर अपनी बुद्धि का लगावें ॥२-१३॥

४७. मरीचि की कथा

सुखरूपी धान को हरा-भरा करने के लिए जो मेघ समान हैं, ऐसे जिनभगवान् के चरणों को नमस्कार कर भरत-पुत्र मरीचि की कथा लिखी जाती है, जैसी कि वह और शास्त्रों में लिखी है ॥१॥

अयोध्या में रहने वाले सम्राट् भारतेश्वर भरत के मरीचि नाम का पुत्र हुआ। मरीचि भव्य था और सरल मन था। जब आदिनाथ भगवान्, जो कि इन्द्र, धरणेन्द्र, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि सभी महापुरुषों द्वारा सदा पूजा किए जाते थे, संसार छोड़कर योगी हुए तब उनके साथ कोई चार हजार राजा और भी साधु हो गए। इस कथा का नायक मरीचि भी इन साधुओं में था ॥२-३॥

भरतराज एक दिन भगवान् आदिनाथ तीर्थकर का उपदेश सुनने को समवसरण में गए। भगवान् को नमस्कार कर उन्होंने पूछा-भगवन् आपके बाद तेईस तीर्थकर और होंगे, ऐसा मुझे आपके उपदेश से जान पड़ा। पर इस सभा में भी कोई ऐसा महापुरुष जो तीर्थकर होने वाला हो? भगवान् बोले-हाँ है। वह यही तेरा पुत्र मरीचि, जो अन्तिम तीर्थकर महावीर के नाम से प्रख्यात होगा। इसमें कोई